30/18

ट्रैक्ट नं० ३२/६

इतिहास में

# भगवान महावीर का स्थान

w-61892

लेखक—
श्री जय भगवान जैन एडवोकेट
पानीपत पंजाब

श्री वीर संवत् २४८३

प्रकाशक—
बाबू लाल जैन जमादार प्रचार मंत्री
अं० वि० जैन मिशन
बड़ौत (मेरठ)

द्वितीय आवृति) १९५७ई० (१०००

# अपनी बात

प्रस्तुत पुस्तक "इतिहास में भगवान महावीर का स्थान" आप के समक्ष द्वितीयबार उपस्थित करते हुए परम हर्ष होता है अ० वि० जैन मिशन द्वारा जितने भी ट्रेकट छपे हैं उनकी समाप्ति निकलते ही हो जाति है और उनकी मांग बराबर बनी रहती है। यह सब विज्ञ व जिज्ञासु पाठकों की सद् भावना का फल, और विवेकशील विद्वान लेखकों की खोज पूर्ण सामग्री का लाभ है।

परमपूज्य श्रद्धेय स्वश्री १०८ आचार्य नमिसागर जीमहाराज के जो प्रवचन दि० जैन कालेज बड़ौत ने १४ अंकों में छपवाकर वितरण किये थे वह भी इसी प्रकार हाथों हाथ समाप्त हुए और जनता की मांग हम पूर्ण न कर सके।

इसी प्रकार आपके मिशन के ट्रैकटों की मांग की पूर्ति की हमें चिंता है। यदि आपका सहयोग हमें अर्थ पूर्ति सहित मिलता रहा जैसा हमारे मान्य ला० रोशनलालजो जैन बजाज बड़ौत की सद् प्रेरणा से यह खोज पूर्ण पुस्तक ला० मंगल सैन फकीरचन्द जी जैन बड़ौत ने छपवाकर हमारे हाथों में पहुँचाई है इसी प्रकार आप भी हमें खोज पूर्ण ट्रेक्ट छपवाकर प्रदान कर सकते हैं आशा है आप अपने दैनिक खर्च में से जिनवाणी प्रचार में हमें अवश्य सहयोग देकर अनुग्रहित करेंगे।

दिगम्बर जैन कालिज
बड़ौत (मेरठ)
८—४—५७ ई०

बाबूलाल जैन जमादार

मुद्रकः—गोपाल प्रिंटिंग प्रेस बड़ौत (मेरठ)

# इतिहासमें भगवान महावीर का स्थान

## महावीर से पूर्व की स्थिति—

दुनियां के इतिहास में ईसा से ६०० वर्ष पहलेका काल आजके काल से बहुत कुछ मिलता जुलता हुआ है, इस लिये उस युग की परिस्थिति, प्रवृति और उनके परिणामोंको अध्ययन करना हमारी अपनी कठिनाइयों को हल करने के लिए बहुत जरूरी हैं। यह वह जमाना था, जब मानव जीवन मानसिक, धार्मिक और सामाजिक रूढियों से जकड़ा हुआ था। उसके विकासका स्वाभाविक स्रोत बहते बहते कर्तव्य-विमूढ़ता से रुककर ठहर गया था। वह अनेक देवी देवताओं की पूजा प्रार्थना करते करते अपनी गुलामी से ऊब चुका था और जाती वर्ण तथा धर्म के नाम पर लड़ते झगड़ते उसका मन थक गया था। तब आजादी की भावनायें उठ उठ कर उसे वाचाल बना रही थीं। तब उसका मन किसी ऐसे सत्य और हकीकत की तालाश में घूम रहा था, जिसे पाकर वह सहज सिद्ध सुख शान्ति और सुन्दरता का आभास कर सके, तब वह किसी ऐसी दुनिया की रचना में लगा था, जहां वह सबके साथ मिल जुल कर सुखका जीवन बिता सके।

यह जमाना दुनिया की तवारीख में मानसिक जागृति, धार्मिक क्रान्ति और सामाजिक उथल-पुथल का युग था। उस जमाने ने पूर्व और पश्चिम सभी देशों में अनेक महापुरुषों को जन्म दिया था। तब योरुप में पाईथेगोरस और एशिया में कन्फ्यूसस, लाओत्ज जैसे महात्माओं ने जन्म लिया थां। उस समय हिन्दुस्तान में भगवान महावीर और म० बुद्ध ने इस जागृति में विशेष भाग लिया था।

उस जमानेके भारतमें तीन बड़ी बड़ी विचार [illegible] जिन्हें हम आज देवतावाद, जड़वाद और अध्यात्मवादके नाम से पुकार सकते हैं। पहली धारा वैदिक ऋषियोंकी उस हैरतभरी निगाह से पैदा हुई थी जो प्राकृतिक दृश्यों और चमत्कारोंको देख देख कर उनमें मनुष्योंतर दिव्य शक्तियोंका भान करा रहीं थीं । दूसरी धारा व्यवहार कुशल लोगों की उस दुनियावी दृष्टि की उपज थी, जो मनुष्य के ऐहिक-जीवन को सुखी और सम्पन्न देखना चाहती थी । तीसरी धारा वीतरागी श्रमणोंके उन भरपूर हृदयोंसे निकली थी, जो इस निःसार, दुखमय जीवन से परे किसी अक्षय अमर सच्चिदानन्द जीवनका आभास कर रहे थे । इन्हीं तीनों धाराओं के संगमपर भगवान महावीर का जन्म हुआ था ।

यद्यपि उस समय यह तीनों विचारधारायें अपनी अपनी पराकाष्ठा को पहुँच चुकी थीं—देवतावाद में "एकमेव अद्वितीय ईश्वर"का भान हो चुका था, जड़वाद अपने लौकिक अभ्युदय के लक्ष्य को चक्रवर्तीयोंकी निर्बाध समृद्धिसम्पन्न एकछत्र राष्ट्रीयता की ऊंचाई तक उठ चुका था और अध्यात्मवाद 'निर्विकल्पकैवल्यं' जैसे आत्मा के सर्वोच्च आदर्शको पाकर परमात्मद की सिद्धि कर चुका था । वह 'सोऽहम्' और तत्वमसि के मन्त्रोंकी दीक्षा देकर सर्वसाधारण हैं आत्मा और परमात्माकी एकता को मान्य बना चुका था—परन्तु कालदोषसे बिगड़कर उस समय यह तीनों धारायें अपने अपने सल्लक्ष्य, सद्ज्ञान और सत्पुरुषार्थ को छोड़ कर केवल ऊपरीं चमत्कारों, मौखिक वितण्डावादों और रूढ़िक क्रियाकाण्डोंमें फंस गई थीं । अहंकार विमूढ़ता और दुराग्रहने इन्हें तेरा-तीन किया हुआ था । इनके पोषक और उपासक कुछ भी रचनात्मक कार्य न करके केवल अपनी स्तुति और दूसरों की निन्दा करने में ही अपनेकी कृतकृत्य मान रहे थे । पक्षपात इतना बढ़ गया था कि सभी सचाई के एक पहलूको देखते जो उन्हें मान्य था, अन्य सभी पहलुओं की वे अवहेलना करते थे—ये सब एकान्तवादी बने थे । इनकी बुद्धि कूटस्थ हो चली थी । तब इनमे न दूसरों के विचारों को सुनने और समझने की सहनशीलता थी न दूसरों को अपनानेकी उदारता थी,

न जमाने की परिस्थिति के साथ बदलने सुधरने, और आगे बढ़ने की ताकत थी। तब इनके दिलो में संकीर्णता जबान में कटुता और बर्ताव में हिंसा भरी थीं।

ऐसे वातावरण में जात-पात और वर्णव्यवस्था के संकीर्ण भावोंको फलने फूलने की खूब आजादी मिली थी। तब जन्म के आधार पर छुटाई बड़ाई की कल्पनाओंने भारतीय जनताको अनेक टुकड़ो में बांट दिया था। भारत की मूल जातियों की दशा जो मानवता के क्षेत्रसे निकाल कर क्षुद्रता के गड्ढे में धकेल दी गई थी, पशुओं से भी परे थी। उन्हें अपने विकास के लिये धार्मिक, राष्ट्रिक और समाजिक कोई भी अधिकार और सुविधाएँ प्राप्त न थी। तब धर्म के नाम पर सब ओर हिंसा, विलासिता और शिथिलाचार बढ़ रहा था। मांस, मदिरा और मैथुन व्यसन खूब फैल रहे थे, स्त्री गोया स्वंय मनुष्य न होकर मनुष्य के लिये भोगवस्तु बनी हुई थी। बहुत से विमूढ जन नदियों में डूबकर, पर्वतों से गिर कर, अग्नि में जलकर, स्वहत्या द्वारा अपना कल्याण मानते थे। व्यर्थ के अन्धविश्वासों क्रियाकाण्डों और विधि-विधानों में समाज के धन, समय और शक्तिका ह्रास हो रहा था। तब धर्म सीधेसादे आचार की चीज न रहकर जटिल आडम्बर की तिजारती चीज बन गई थी, जो यज्ञ-हवन कराकर देवी-देवताओं से, दान-दक्षिणा दे कर पुरोहित पुजारियों से खरीदी जा रही थीं।

उस समय भारत के श्रमण साधु भी विकारसे खाली न थे। उन में से बहुत से तो ऋद्धि-सिद्धिके चमकारो में पड़कर हठयोग के अनुयायी बने थे। बहुत से साधुओं जैसा बाहरी रंगरूप बनाकर रहने में ही अपने को सिद्धमानते थे। बहुत से तनकी बाहरी शुद्धिको ही अधिक प्रधानता दे रहे थे। बहुत से सुख शीलता में पड़कर थोथी सैद्धान्तिक चर्चाओं और वाक्संघर्ष में ही अपने समयको विता रहे थे। बहुत से दम्भ और भय से इतने भरे थे कि वे दूसरों को अध्यात्म विद्या देने में अपनी हानि समझने लगे थे।

भारत की इस परिस्थिति में जब धर्म के नाम पर मानवताका खून और

आत्माका शोषण हो रहा था' सब ही हृदयों मे प्रचिलत विश्वास मन्यताओं और प्रवृत्तियों के विरूद्ध एक विद्रोह की लहर जाग रही थी विचारों में उथल.पुथल मची थी, स्थितिपालकों और सुधारकों में संघर्ष चल रहा था। इस संघर्ष के फलस्वरूप तब सभी धाराओं के विद्वान अपने अपने सिद्धान्तों की संभाल, शोध और उनके इक्ट्ठा करने में लगे थे। एक तरफ वैदिक परम्पराकी रक्षा के लिये यास्काचार्य, शौनक और आश्वलायन जैसे विद्वान पैदा हो रहे थे। दूसरी तरफ वैदिक संस्कृतिको मिटाने और भौतिक संस्कृतिकों फैलाने लिये जड़वाद के प्रसिद्ध आचार्य अजितकेशकम्बली और बृहस्पति मैदान में आरहे थे। तीसरी भौतिकवाद की निस्सारता दिखाने के लिए अक्षपाद गौतम जैसे न्याय-दर्शनको जन्म दे रहे थे। इनके साथ ही साथ मस्करी गोशाल' संजय, प्रकुद्ध, कात्यायन और पूर्णकश्यप जैसे कितनेही आध्यात्मिक तत्ववेत्ता अपने अपने ढंग से जीवन और जगत की गुत्थियों को सुलझाने में लगे थे।

## जैनधर्म का उद्धार और तत्कालीन स्थिती का सुधार

ऐसे बातावरण में लोगों के दिलों में समता, मन में उदारता, बर्ताव में सहिष्णुता और जीबन में संमय सदाचार भरने के लिये भगवान महाबीरने अपने आदर्श जीवन और उपदेश.द्वारा जिस श्रमण संस्कृतिका पुनरूद्धार किया था वह उनके पीछे जैनधर्म के नाम से प्रसिद्ध हुंई। भगवान महबीर इस धर्म के कोई मूल-प्रवर्सकन थे, वह उसके उद्धारक ही थे, क्योकि यह धर्म उनसे बहुत पहले,वैदिक आर्यगण के आने से भी पहिले यहाँ के मूलवासी द्रविड और नाग लोगों में अर्हत, यति,व्रात्य जिन, निर्ग्रन्थ अथवा श्रमण संस्कृतिके नाम से बराबर जारी था और पीछे से विदेह और मगध देशों में आकर बसने वाले सूर्यवंशी आर्यगण से अपनाया जाकर आर्यधर्म में बदल गया था। यह धर्म भारत.भूमिकी ऐसी ही मौलिक उपज है, जैसे कि यहां के शैव और शाक्त नाम के प्राचीन धर्म इस ऐतिहासिक सच्चाई को मानने के लिए गो शुरू शुरू में ऐतिहासज्ञों को बड़ी कठिनता उठानी पड़ी किन्तु आज प्राचीन साहित्य और पुरातत्वकी नई खोजों से यह बात दिन पर दिन अधिक प्रमाणित होती जा

रही है कि जैनधर्म भारत के मूलवासी द्रविड़ लोगों का धर्म है[1]। और महावीर से भी पहिले इस धर्म के प्रचारक ऋषभदेव आदि २३ तीर्थंकर और हो चुके हैं। इनमें से अरिष्टनेमि और पार्श्वनाथ तो आज बहुत अंशों में ऐतिहासिक व्यक्ति भी सिद्ध हो चुके हैं।

श्रमण-संस्कृति सदा ही जीवन-विकास के लिये सात तत्वोंको मुख्यता देती रही है—आत्मविश्वास, मानसिक उदारता, संयम अनासक्ति अहिंसा, पवित्रता और समता। भगवान महावीर ने इन्हें ही साधन-द्वारा अपने जीवन में उतारा था और इन्ही की सबको शिक्षा।दीक्षा दी थी। यही सात अध्यात्मिक तत्व आज जैन दार्शनिकोंकी बौद्धिक परिभाषा में जीव, अजीव, आस्त्रव, बंध, संवर, निजरा और मोक्ष के नाम से प्रसिद्ध हैं।

## वर्णव्यवस्था और मानवता

भगवान ने सामाजिक क्षेत्र में जन्म के आधार पर वने हुए मानवी भेद-भावोंका घोर विरोध किया। उन्हों ने बताया कि जन्म की अपेक्षा सभी मनुष्य समान हैं। सभी एक जाति के हैं, क्योंकि सब ही एक समान गर्भ में रहते हैं, एक समान ही पैदा होते हैं। सबके शरीर और अंगोपाङ्ग भी एक समान हैं, किन्हीं दो वर्णों के समागमसे मनुष्य ही उत्पन्न होता है। इसलिए मनुष्यों में जन्म की अपेक्षा विभिन्न जातियों की कल्पना करना कुदरती नियम के खिलाफ हैं। जन्म से कोई भी ब्राह्मण. क्षत्रिय, शिल्पी और चोर नहीं होते वे सब अपने कर्म, स्वभाव और गुणोंसे ही ऐसे होते हैं। मनुष्यों में श्रेष्ठता और नीचता उनके अपने आचार बिचार पर ही निर्भर हैं। जो लोग कुल, गोत्र वर्ण अदि लोक व्यवहृत संज्ञाओं के अभिमानो को छोड़े बिना मनुष्य न अपना हित कर सकता है, न दूसरों का।

## देवतावाद और अध्यात्मवाद

धर्मक्षेत्र में तो यहां की आम जनता पुरानी रूढ़ियों की अनुयायी होने से अजीब अन्ध.विश्वासों और मूढ प्रथाओं में फंसी हुई थी। अनार्य

1 (अ) Prof. Belvalkar--Brahma Sutra P. 107.

लोग रोग, मरी, दुर्भिक्ष जलबाढ़, आन्धी तूफान, भूकम्प, ज्वालस्फोट, टिड्डीदल, चूहे और साँप आदिके भयानक उपद्रवों को अनेक क्रूरकर्मा रुद्र स्वभाव देवीं-देवताओं की शक्तियाँ कल्पित करते थे और उन की शान्ति के लिए अनेक प्रकार के घिनावने तान्त्रिक विधान पशुवलि और नरमेधका प्रयोग करते थे। वैदिक आर्यों के देवता यद्यपि इनकी अपेक्षा सौम्य और सुंदर थे परन्तु दृष्टि वही आधिदैविक थी। ये इनसानी जिन्दगी को सुख-सम्पत्ति देने वाली इन्द्र, अग्नि, वायु वरुण, सूर्य आदि देवताओं को मानते थे। इस लिये धन धान्यकी प्राप्ति, पुत्र पौत्रों की उत्पत्ति, दीर्घायु आरोग्यताकी सिद्धी शत्रु विजय आदि की भावनाओ से उन देवताओं को यज्ञों-द्वारा खूब सन्तुष्ट करते थे। इन यज्ञोंमें बनस्पति घी आदि सामग्रीके अलावा पशुओं की भी खूब बलि दी जाती थी। इस तरह विश्वासों ने मनुष्योको अत्मविश्वास और पुरुषार्थ से हीन बना कर देवताओं का दास ही बनादिया था। इस हालतसे उभारने के लिये महाबीर ने बतलाया था कि मनुष्य का दर्जा देवताओं से बहुत उंचा हैं। मनुष्य अपने बुद्धिबल और योगबल से न केवल देवताओंको अपने आधीन कर सकता है बल्कि वे काम भी कर सकता है, जो देवताओं के लिए असम्भव हैं मनुष्य योगसाधनासे अणिमा, गरिमा आदि अनेक सिद्धियों को हासिल कर सकता हैं और अपने को परमात्मा तक से मिला सकता है।

मनुष्यका सुख दुःख देवताओं के आधींन नहीं है। बल्कि स्वयं अपनी ही वृत्तियों और कृतियों के आधीन है—जो जैसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता हैं कर्म से ही स्वर्ग और कर्मसे ही नरक मिलता है। इसलिये मनुष्य को कर्म करने में बड़ा सावधान होना चाहिये संसार के सभी जीव

---

(आ) Prof. Hermann Jacobi—S. B. E. Vol. XLV Jaiua Sutras Part 11, 1895–Introduction pp. XIV–XXXVI.

(इ) R. B. Ramprasad Chanda—Survival of the Prehistoric civilisation oh the Indus Valley–pp. 25-33.

स्वभाव से सौम्य और श्रेष्ठ हैं, ऊर्ध्वगामी हैं। सभी में परमात्मत्व ओत प्रोत है–अन्तर केवल उनके विकास में हैं। जीवों का यह विकास जहाँ उनके निजी भावों पर निर्भर हैं वहाँ बाहिरके द्रव्य, क्षेत्र और काल पर भी निर्भर हैं। इस भीतर और वाहिरकी स्थितिका आपसमें बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। एकका प्रभाव दूसरे पर निरन्तर पड़ता रहता हैं। इन स्थितियोंकी प्रतिकूलता में जीवका पतन होता हैं और इनकी अनुकूलता में उद्धार होता है। इस लिए मनुष्य को उचित है कि वह अपने भावोंके सुधार के साथअपने देश काल का भो सुधार करता रहे। वास्तव में लोकका सुधार अपना ही सुधार है और परकी सेवा अपनी ही सेवा है। संसार में जीवको जितनी जितनी मात्रा में स्वतन्त्रता, सुभिता सहायता और नेक सुझाव मिलते चले जाते हैं' उसका जीवन उतना ही विकसित होता चला जाता हैं। इस लिये मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म यह हैं कि वह सब जीवोंको अपने समान समझे और अपने समान ही उनके साथ मैत्री का व्यवहार करे। जो जीव दुःखी और भयभीत हैं, पराधीन और असहाय हैं उनके साथ दया का व्यवहार करे। जो अपने से गुणोंकी अपेक्षा बड़े हैं उन के प्रति श्रद्धा और प्रमोदका वर्ताव करे। जो जीव विपरीतबुद्धि वा दुर्व्यवहारी हैं, उनसे भी क्षुभित होकर हिंसाका व्यवहार न करें, बल्कि उन्हें रोग और विकारग्रस्त समझ कर उनके साथ माध्यस्थवृत्ति से चिकित्सकके समान वर्ताव करे।

## एकान्तवाद और अनेकान्तवाद

विचारकों के हठाग्रह, पक्षपात और एकान्त–पद्धतिके कारण लोगों में जो अहंकार, संकीर्णता, मनोमालिन्य, कलह क्लेश बढ़ रहे थे, उन्होंने भगवान महावीर के ध्यानको विशेषरूप से आकर्षित किया था, भगवानने इस एकान्त पद्धतिको ही ज्ञान–अवरोध, मानसिक संकीर्णता, हार्दिक द्वेष और मौखिक वितण्डोंका कारण ठहरा कर इसकी कठोर समालोचना की थी और बतलाया था कि सत्य, जिसे जानने की सब में जिज्ञासा बनी हैं, जिसके सम्यक्ज्ञानसे मुक्तिकी सिद्धि होती है, बहुत ही गहन और गम्भीर है, वह अनेक अपेक्षाओं का पुञ्ज है, अनेक

विरोधों का संगम है, वह सत्यासत्य नित्य नित्यानित्य, एकानेक सामान्य विशेष जीवाजीव ऋतअनृत आदि विभिन्न द्वन्दों की रंग भूमि है वह भीतर और बाहर सब ओर फैला हुआ है, वह अनादि और अनन्त है, वह हमारी सारी बौद्धिक मान्यताओं और विधिनिषेधरूप सारे शब्द-वाक्यों से बहुत ऊपर है। वह अनेकान्तमय है, इस लिये उसके अध्ययन में हमें बहुत ही उदार होना चाहिये और तत्सम्बन्धी सभी विचारों को समझने, अपनाने और समन्वय करने की कोशिश करनी चाहिये।

## भगवानके प्रति लोगोंकी श्रद्धा

इस तरह महावीरका जीवन इतना तपस्वी, त्यागपूर्ण, दयामय, सरल और पवित्र था, उनके विचार इतने उदार, व्यापक और समन्वयकार थे, उनके सिद्धान्त ऐसे आशा पूर्ण उत्साह वर्धक और शान्तिदायक थे कि वह अपने जीवनकाल में ही अर्हन्त, सर्वज्ञ, तीर्थंकर आदि नामों से प्रसिद्ध हो चले थे। केवलज्ञानप्राप्तिके पीछे वह भारत के पूर्व पच्छिम' उत्तर, मध्य और दक्षिण के देशों में जहाँ कहीं भी गये सभी राजा और रंक, पतित और प्रतिष्ठत, ब्राह्मण और क्षत्रिय' वैश्य और शूद्र, पुरुषों और स्त्रियों ने उनका खूब स्वागत किया सभी ने उनके उपदेशों को अपनाया और सभी उनके मार्ग के अनुयायी बने। इनमें वैशाली के राजा चेटक, अङ्गदेश के राजा कुणिक, कलिङ्ग के राजा जितशत्रु, वत्स के राजा शतानीक, सिन्धु-सौवीर के राजा उदयन, मगध के सम्राट श्रेणिक बिम्बसार, दक्षिण हेमागदक राजा जीवंधर विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त सम्राट श्रेणिक के अभयकुमार, वारिषेण आदि १३ राजकुमार और नन्दा, नन्दमती आदि १३ रानियाँ तथा उपरोक्त राजाओं मेंसे उदयन और जीवंधर तो उनके समान ही जिनदीक्षा ले जैन श्रमण बन गये। इनके अलावा वैदिक वाङ्मयके पारंगत विद्वान इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति और स्कन्दक जैसे अपनी सैकड़ों की शिष्य

१ (अ) बा० कामताप्रसाद-भगवान महावीर और महावीर महात्मा बुद्ध पृ० ६५-६६ (आ) प० कल्याण विजय — श्रमण भगवान महावीर तीसरा परिच्छेद

मण्डली सहित तथा शालिभद्र धन्यकुमार' प्रीतंकर आदि मगध धनकुबेर विद्युच्चर, अञ्जन जैसे डाकू और चण्ड कौशिक जैसेमहाघातक भी उनके द्वारा दीक्षित हो जैनमुनि हो गये। उस समय उन की मान्यता इतनी इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि वह सभी के लिये अनुपम आदर्श धर्म अवतार हो गये थे। सभी के लिये परमशान्ति, परमज्ञान परमानन्द और विश्वकल्याण के प्रतीक बन गये थे। उस जमाने के लोग उनके आदर्श जीवन को ही दूसरे श्रमण अर्हन्तों की पूर्णता और सर्वज्ञता जाचने के लिए मापदण्ड की तरह काम में लाते थे।

उस समय के लोगों की भगवान के प्रति कितनी श्रद्धा औरभक्ति थी, इस बात का अन्दाजा लगाने के लिये इतना कहना ही काफी होगा कि भारत के ऐतिहासिक युग में सब से पहला सम्वत् जो कायम हुआ वह। इन्हीं के निर्वाण की शुभ स्मृति में कायम हुआ था। यह संवत् आज भी वीर-संवत् के नाम से जैन लोगों में प्रचलित है। कुछ विद्वानों का मत हैं कि द्वापर युग में महाराज युधिष्ठिर के राज्यारोहणकी स्मृतिमें भी एक संवत् भारत में जारी हुआ था. परन्तु इसका ऐतिहासिक युग से कोई सम्बन्ध नहीं है। इन्हीं के निर्वाण के उपलक्षमें दीपावली पर्व की स्थपना हुई। चूकि इनका निर्वाण कार्तिक कृष्णा १४ की रात्रि के अन्तिम पहर में हुआ था अर्थात् चौदश व अमावस्या तिथि के संगम पर हुआ था इसलिए छोटी बड़ी दिवाली के नाम से दोनों दिन पर्व के दिन बन गये घर-बार की सफाई करना। उन्हें सजाना, दीपमालिका जगाना, मिठाई

---

१ (अ) Dr. B. C. Law—Historical gleanings P. 78

(आ) Bulher—Indian Sect of the Jainas P. 132

इमज्झिम निफाय १४ वा सुत, अङ्गुत्तर निकाय १-२२०

(अ) महा० हीरचन्द ओझा भारतीय प्राचीन लिपि.माला।

पृ० २, ३

(आ) लोकमान्य तिलक सन १९०४ में जैनकान्फरेंस मेंदिया हुआ भाषण।

और खील वितरण करना समोषरण (हट्टी घरोंटा) की रचना करके उसे पूजना। लक्ष्मी और गणेश की पूजा इस पर्व के विशेष अंग हैं। भगवान के तपस्या काल की बँगाल प्रान्तगत यह पर्यटन भूमि जो कभी राढ अथवा लाड़ नाम से प्रसिद्ध थी, इन्हीं के वीर अथवा वर्धमान नामों के कारण आजतक सिंहं भूम, मान भूम बीरभूम और वर्दवान के नाम से प्रसिद्ध हैं[१]।

## भारत के धर्मों में जैनधर्म का स्थान

भगवानने अपने जीव काल में जिस धर्म की देशना की थी वह उन के निर्वाण के बाद उनके अनुयायी अनेक त्यागी और तपस्वी महात्माओं के प्रभाव के कारण और भी अधिक फैला। वह फैलते २ भारत के सब ही देशोंमें पहुँच गया और सब ही जातियों के लोगों ने इससे शिक्षा दीक्षा ग्रहण की। यद्यपि इस धर्म के मानने वालों की संख्या आज केवल ३० लाख के लगभग हैं और यह धर्म आजकल अधिकतर वैश्य जातियों के लोगों में ही फैला हुआ दिखाई देता है परन्तु इससे यह भ्रान्ति कदापि न होनी चाहिये, कि यह धर्म सदा से लघुसंख्यक लोगों द्वारा ही भारत में अपनाया गया अथवा यह धर्म सदा से वैश्य लोगों में ही प्रचलित रहा है। नहीं—साहित्य, शिलालेख, पुरातत्व और स्मारकों के अगणित प्रमाणों से यह बात पूरे तौर पर सिद्ध है कि यह धर्म भारत के उत्तर—दक्षिण में काम्बोज गान्धार और बलख से लेकर सिंहल द्वीप तक और पश्चिम पूरब में अंग-बंग से लेकर सिन्धु सुराष्ट्र तक सबही स्थानों और जातियों में फैला हुआ था, और इसके मानने वालों की संख्या ईसा की १६ वीं सदी अर्थात् मुगल सम्राट अकबर केशासन-काल तक करोड़ से भी अधिक रही हैं। वास्तव में इस धर्म का उद्भव क्षत्रिय वीरों की योगसाधनासे हुआ है

(अ) N. L. Dey. Ancient Indian Geographical Dictionary P. 164

(आ) नागेन्द्रनाथ वसुँ बंगला विश्वकोष १६२१

और उन्हीं के राजवंशोंकी संरक्षता में ईसा की १६ वीं सदी तक इसका उत्कर्ष होता रहा है भारत के ऐतिहासिक युग में ईसा पूर्व की छटी सदीसे लेकर अर्थात भगवान महावीर कालसे ईसाकी पहिली सदी तक हम इस धर्म को लगातार विदेह देश के लिच्छवी और मल्ल जातिके क्षत्रियोंमें मगधके शिशुनाग, नन्द और मौर्यराजवशों में, मध्यभारतके काशी, कौशल, वत्स, अवन्ति और मथुरा के राज्य शासकों में कलिंग के राजवंशी सम्राट खारवेल आदिके राजघरानों में, सुराष्ट्र राजपूतानाके लोगों में, उत्तर में गान्धार तक्षशिला आदि देशों में, दक्षिणके पाण्ड्य, पल्लव, चेर, चोल आदि तामिल देशों में हम इस धर्मको एक आदरणीय धर्मके रूप मे सर्वत्र फैला हुआ देखते हैं। मौर्यसाम्राज्यके विखर जानेके उपरान्त, ईसापूर्व की दूसरी सदी में जो यूनानी, इण्डो सीथियन अथवा शक जाति के लोग एक दूसरे के बाद उत्तरीय देशोंसे आकर भारत के पश्चिम उत्तरके पंजाब, सिन्ध, मालवा आदि प्राँतों के अधिकारी हो गये थे, वे भी जैन धर्म से काफी प्रभावित हुवे थे[१]। भारत के प्रसिद्ध यवन राजा मनेन्द्र (Mennander), जो जैन श्रमणोंके प्रति बड़ी श्रद्धा रखते थे-'अपने अन्तिम जीवन में जैन धर्ममें दीक्षित हो गये थे[२]। क्षत्रप नहपान भी जैनधर्मके बड़े प्रेमी थे। इनके सम्बन्ध में विद्वानोंका विचार है कि वह जैन धर्ममें दीक्षित होकर भूतबली नाम के एक दिगम्बर जैन आचार्य बन गये थे जिन्हों ने षट् खण्डागम शास्त्रको रचना की थी[३]। मथुरा के प्रसिद्ध जैन पुरातत्व से सिद्ध हैं कि कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव शक राजाओं के शासन कालमें जैन धर्म की मान्यता बहुत फैली हुई थी।

मध्यकालीन युग में भी यह धर्म राजपूताने के राठोर, परमार, चौहान और गुजरात तथा दक्षिण के गंग, कदम्ब, राष्ट्रकूट, चालुक्य, कलचूरी और होयसल आदि राजवन्शों का राजधर्म रहा है। गुप्त आन्ध्र और विजयनगर साम्राज्य कालमें भी इस धर्म को राज्य शासकों की ओर से सदा सम्मान मिलता रहा है। यह इन्हीं की संरक्षता और प्रोत्साहनका फल है कि जैन

1 Dr. B. C Law Historical Gleaningsr. 78

२ वीर. वर्ष दो, पृ० ४४६.४४६

३ बा० कामताप्रसाद–दिगम्बरत्व पृ० १२०

धर्म मध्ययुगमें श्रवण बेलगोल और कारकल की विशालकाय गोम्मटेश्वरकी मूर्तियों और आबू पर्वत के दिलवाड़ा मन्दिर, चित्तोड़गढ़ के जैनकीर्तिस्थम्भ जैसे लोक प्रसिद्ध स्मारकों को पैदा कर सका है। और समन्तभद्र सिद्ध-सेन दिवाकर, सिद्धसैन गणि, पूज्यपाद देवनन्दी, अकलंक-देव, विद्यानन्दी, वीरसैन, जिनसैन, सोमदेव, माणिक्यनन्दी, प्रभाचन्द्र, हेमचन्द्र, हरिभद्र-सूरी, नेमीचन्द्र सि० चक्रवर्ति आदि रचित अनेक साहित्य और दर्शनशास्त्र के अमूल्य रत्नों को जन्म दे सका है।

## जैनधर्म और बाहिर के देश

जैनधर्मको न केवल भारतमें, वल्कि भारतसे बाहिर के देशों से भी सम्पर्क रखने, वहाँ पर सन्मान पाने और वहाँ के संस्कृकि-प्रवाहको प्रभावित करनेका सदा गौरव प्राप्त रहा है। महावंश[1] नामक बौद्धग्रंथसे साबित

1 Prot Buhler, An Indian Sect of the *Jaiuns* p. 37

१ हुवाग स्वांग ने सातवीं सदी में मध्यएशिया के जिस (Caspin) नगर में अनेक निग्रंथ साधुओं को देखा था, उसी नगर में सिकन्दर के यूनानियों ने भी अनेक निर्ग्रंथ साधुओं को देखा।

२ आर्द्र कुमार नामका राजकुमार ईरान देश का वासी था। वह भगवान महावीर द्वारा जैन धर्म में दीक्षित हुआ था, उसने ईरान देश में जाकर जैन धर्म का प्रचार किया और जैन मूर्तियों की स्थापना कराई।

३ Pythagoras ५८० ईसवी पूर्व में पैदा हुए थे इसके अनुयायी एशिया माईनर में आयोनियन सम्प्रदाय के थे। मध्य एशियाके कैसपिय, अमम समरकन्द, बलख आदि नगरों में जैन धर्म का प्रचार रहा है।

४ Dr. B. C. Law-Historical Gleanings. p 42.

(आ) पं० सुन्दरलाल-किवश्वार्खा अप्रैल १९४९p ४९४

(इ) Sir William James—Asiatic Researchesvol III p. 6.

(ई) Megasthenes—Ancient *I*ndia p. 104

(उ) बा० कामता प्रसाद—दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि पृ० १११-११३, २४३

है कि ४३७ ई० पूर्व में सिंहलदीप के राजा ने अपनी राजधानी अनरूद्धपुरमें जैन मन्दिर और जैनमठ बनवाये थे, जो ४०० साल तक कायम रहे। इतना ही नहीं भगवान महावीर के समय से लेकर ईसा की पहली सदी तक मध्य एशिया[1] और लघु एशिया के अफगानिस्तान, ईरान, ईराक, फ़िलिस्तीन, सीरिया आदि देशों के साथ अथवा मध्यसागर से निकटवर्ति यूनान, मिश्र, इथोपिया (Ethopia) और एबीसीनिया आदि देशों के साथ जैन श्रमणोंका सम्पर्क बराबर बना रहा है[2]। यूनानी लेखकों के कथन से जहाँ यह सिद्ध है कि पायेथेगोरस (Pythagoras)[3] पैररहो (Pyrrho) डाइजिनेस (Diogenes) जैसे यूनानी तत्ववेताओं ने भारत में आकर जैन श्रमणों से शिक्षादीक्षा ग्रहण की थी यहाँ यह भी सिद्ध है कि यूनानीबादशाह सिकन्दर महान के साथ भारत से जाने वाले जैन ऋषि कल्याण के समान सैकडों जैनश्रमण समय समय पर उक्त देशों में जाकर अपने धर्म का प्रचार करते रहे हैं और उन देशों में अपने मठ बनाकर रहते रहे हैं। जैन साहित से भी विदित है कि मौर्य सम्राट अशोक के पोते सम्राट, सम्प्रति ने ईसा पूर्व कीतीसरी सदी में बहुत से जैन श्रमणों को जैनधर्म प्रचारार्थ अनार्य देशों में भिजवाया था[1]।

## जैनधर्म और ईसाईधर्म

कितने ही विद्वानों का मत है कि प्रभु ईसाने इन्हीं श्रमणोंसे जो बहुत बड़ी संख्या में फिलिस्तीनके अन्दर अपने मठ बनाकर रहते थे, अध्यात्मविद्याके रहस्यको पाया था और इन्हींके आदेश पर चलकर उसने अपने जीवन की शुद्धिअर्थ आत्म-विश्वप्रेम, जीव-दया, मार्दव, क्षमा, संयम, अपरिग्रह प्रायश्चित्त, समता आदि धर्मों की साधना की थी[2]। इससे भी आगे बढ़कर अनेक प्रामाणिक युक्तियोंके आधार पर अब विद्वानोंको यह निश्चय

१—श्री हेमचन्द्राचार्य कृत परिशिष्ट पर्व श्लोक ६६—१०२

२—पं० सुन्दरलाल-हजरत ईसा और ईसाई धर्म पृ० २२

३—पं० सुन्दरलाल हजरत ईसा और धर्म। १६२

होता जा रहा है कि ईसा जब १३ साल के हुए और घर वालों ने उनकी शादी की सलाह करना शुरु की, तो वह घर छोड़ कर कुछ सौदागरों केसाथ सिन्धके रास्ते हिन्दुस्तान में चले आये वह जन्म से ही बड़े विचारक और सत्य के खोजी थे और दुनियाके भोग-विलासोंसे उदासीन थे। यहां आकर वे बहुत दिनों तक जैनश्रमणों के साथ भी रहते रहे, बौद्ध भिक्षुओंके साथ भी रहते रहे, फिर वे नैपाल और हिमालय होते हुए ईरान चले गये और वहां से अपने देशमें जाकर उन्होंने अहिंसा और विश्वप्रेम प्रचार शुरू कर दिया[3]। प्रभु ईसाने अपने आचार-विचार के मूल तत्वोंकी शिक्षा श्रमणों से पाई थी, इस बात से भी सिद्ध है कि उन्होंने अपने उपदेशो में जिन तीन विलक्षण सिद्धान्तों पर जोर दिया है वे देवताप्रधान यहूदी संस्कृतिस सम्बन्ध नहीं रखते, वे तो भारत की श्रमण संस्कृतिके हीमूल आधार हैं। वे हैं आत्मा और परमात्मा की एकता, आत्माका अमरत्व, आत्मका दिव्यजीवन। ईसा सदा अपनेको ईश्वरका बेटा कहा करते थे[1]। जब आदमी उन से पूछते कि ईश्वर कहां है तो अपनी ओर

---

1. Bible ST. John. 5-18.
2. ,, ,, 8-19.
3. ,, ,, 10-30.

"He that hath seen me hath seen the father, Believeth those not that I am in the father and the Father in me" ? 14-8.10.

("1 and my Father are one")

4. Bible-St. John. 8-56.59.

(Verilv, verily. I say unto you, before Abraham

5. Bible St. John. 10-25.

"I am the resurrection and the life, he that believeth in me though, he were dead, yet shall he live".

संकेत करके कहते कि वह स्वयं ईश्वर का साक्षात् रूप है, जो उसे देखते और जानते हैं वे ईश्वर को देखते और जानते हैं[२] चूंकि वह और ईश्वर दोनों एक हैं[३]। वह अपने उपदेशों में पुनर्जन्म और अमर जीवन के सिद्धान्तों पर भी काफी प्रकाश डाला करते थे। वह कहा करते थे कि यह मेरा पहला जन्म नहीं है, मैं अबसे पहिले भी मौजूद था–हजरत अब्राहमके समयमें भी मौजूद था[४]। जो जीवनकी अमरता और पुनर्जन्म में यकीन करेगा वह कभी नहीं मरेगा[५]। बिना पुनर्जन्मके सिद्धान्तों को माने दिव्य साम्राज्यकी भी प्राप्ति नहीं हो सकती[१]। दिव्य साम्राज्य (Kingdom of heaven) से उनको मुरादा जीवन की उस अवस्थासे थी जब मनुष्य अपनी समस्त इच्छाओं वासनाओं, कषायोंको विजय करके अपना स्वामी हो जाता है, जन्म–मरण के सिलसिले को खतम करके अक्षय सुख और अमृतका मालिक हो जाता है।

ये उक्त सिद्धान्त फिलिस्तीन में बसने वाली यहूदी जातिकी प्रचलित मान्यताओं से बिल्कुल विभिन्न थे, यहूदी लोग इनके प्रचार को नास्तिकता समझते थे और इन सिद्धान्तों के प्रचार को रोकने के लिए वे सदा प्रभु ईसाको ईंट पत्थरों से मारने को तय्यार रहते थे। इन्हीं सिद्धान्तों के प्रचार के कारण प्रभु ईसा को पकड़कर उनके विरुद्ध अभियोग चलाया गया था और उन्हें सूली की सजा मिली थी[२]। प्रभु ईशा को अपने जिन आध्यात्मिक आचार-विचारों के कारण उमर भर अपने देशवासियों से पीड़ा और यन्त्रणा सहनी पड़ी, वही पीछे से देशवासियों की सद्बुद्धि

---

1. Bible–St. Johan.3–3
"Verily verily I say unto you except a man be born again, he cannot see the Kingdom of God.
2. पं० सुन्दरलाल–हजरत ईसा और ईसाई धर्म पृ० १३३-१४०

द्वारा अपनाये जाकर और देश की पुरानी यहूदी संस्कृति की अनेक मान्यताओं और प्रथाओं से मिलकर ईसाई धर्म के रूपमें प्रकट हुए। वास्तव में ईसाई धर्म श्रमणसंस्कृतिका ही यहूदी संस्करण है।

## भारत और जैन संस्कृति

जहां तक भारत का सवाल है, उसके जीवन पर तो जैन संस्कृति ने बहुत ही गहरा प्रभाव डाला है, जैसा कि लोकमान्य तिलक का मत है—'इसके अहिंसा तत्वने तो भारतीय रहन सहन पर एक अमिट छाप लगाई है। पूर्व-काल में यज्ञों के लिये जो असंख्य पशुओं की बली होती थी वह जैन अहिंसा के प्रचार से ही बन्द हुई हैं [१]।' इस धर्म ने यहां के खान पान में भी बहुत बड़ा सुधार किया है। भारतकी जो जो जातियां इसके प्रभाव में आईं सभी मांसाहारको छोड़कर शाक-भोजी होती चली गईं इस धर्म ने भारत के फौज़दारी कानूनके दण्डविधान को भी काफी नरम बनाया है। इससे सजाओं अमानुषिक सख्ती और बेरहमी में बहुत कमी हुई है। इस धर्मके कारण दण्डविधानकी जगह प्रायश्चित्विधान को विशेष स्थान मिला है[२]। यह अहिंसा धर्म लोगों के जीवन में उतरते उतरते इतना घर कर गया कि उसके विरुद्ध चलनेसे सभीको लोकनिन्दा का भय होने लगा। इसी कारणसे महावीर के उत्तरकाल में हिंदु स्मृतिकारों और पुराण-कारों ने जितना आचार-सम्बन्धी साहित्य लिखा है, उस सब में उन्होंने नरमेध, अश्वमेध, पशुबलि और मांसाहार को लोक-विरुद्ध होने से त्याज्य ठहराया है[३]।

जैनधर्म के आध्यात्मिक विचारों का भी भारतीय संस्कृति पर

---

१ लोकमान्यतिलक—१९०४ में जैन कान्फ्रेंस में दिया हुआ व्याख्यान

२ ओझाजी—मध्यकालीन भारतीय संस्कृति-पृ० ३४

३ याज्ञवल्क्य स्मृति १-१५६, वृहन्नारदीय पुराण, २२ १२ १६; ओझा जी-मध्यकालीन भा० संस्कृति पृ० ३४

कुछ कम प्रभाव नहीं पड़ा है पशुबलि और मांसाहार के बन्द होने से याज्ञिक क्रियाकाण्डों को बहुत धक्का पहुँचा और होते होते वह भी सदा के लिये भारत से विदा हो गया । उसके स्थानमें सदाचारको बड़ी मान्यता मिली यम, नियम ब्रत, उपवास, दान, संयम ही लोगों के जीवन के पुनः धर्म वन गये । ज्ञान, ध्यान, संन्यास और त्यागी वीर महापुरुषों की भक्तिके पुराने आध्यात्मिक मार्गों का पुनरुत्थान हुआ। महावीर के उपरान्त वैदिक संहिताओं ब्राह्मणग्रन्थों और श्रौतसूत्रों जैसे क्रियाकाण्डी साहित्य की बजाय हिन्दुओं में उपनिषद्, पुराण, ब्रह्मसूत्र, गीता योगवासिष्ठ अथवा रामायण जैसे आध्यात्मिक और भक्तिपरक ग्रन्थों को अधिक महत्व मिला। इस संबंधमें बहुतसे विद्वानों का मत है कि हिन्दुओं में जो २४ अवतारों की कल्पना पैदा हुई, उसका श्रेय भी जैनियों की २४ तीर्थङ्कर वाली मान्यता को ही है[1]। खैर कुछ भी हो, इतनी बात तो प्रत्यक्ष है कि इन्द्र, अग्नि वायु वरुण सरीखे प्रोक्षप्रिय मनोकल्पित देवताओंके स्थान में जो महत्ता भगवान कृष्ण और भगवान राम जैसे कर्मठ ऐतिहासिक क्षत्रिय वीरोंको मिली है उसका श्रेय भी भारतकी उस प्राचीन श्रमण संस्कृतियों को ही है, जो सदा महापुरुषों को साक्षात देवता अथवा दिव्य अवतार मानकर पूजती रही है ।

## भारतीय कला और साहित्य में जैन धर्म का स्थान

इन अध्यात्मवादी श्रमणों के उपासक लोगोंमें अपने माननीय तीर्थङ्करोंकी मूर्त्तियां और मन्दिर बनाने, उनकी पूजाभक्ति करने और उत्साव मनाने की जो प्रथायें प्राचीन काल से जारी थीं उनसे महाबीर के उत्तर काल में याज्ञिक क्रियाकाण्डों के उत्साव बन्द हो जाने पर भारत के अन्य धर्म वाले बड़े प्रभावित हुए । ईसा की पहली और दूसरी सदी के करीब हम

---

१ ओझा जी मध्यकालीन भा० संस्कृति १७

देखते हैं कि जैनियोंके समान बौद्ध और हिंदु भी अपने माननीय महापुरुषोंकी मूर्तियाँ और मन्दिर बनाने, उनकी भक्ति करनेमें लगगये। उस समय शुरू में बौद्धोंने भगवान बुद्ध और हिन्दुओंने भगवान कृष्ण की मूर्तियाँ निर्माण की। पीछे तो इस प्रथाने इतना जोर पकड़ा और मूर्तिकलाने इतनी उन्नति की, कि भारतमें ब्रह्मा, शिव पार्वती, गणेश, लक्ष्मी, सरस्वती, कृष्णके अतिरिक्त विष्णुके अन्य अवतारों, बोधिसत्व आदि अनेक प्रकारकी सौम्य मूर्तियों की एक बाढ़ सी आगई। फिर क्या था, जैन, बौद्ध और हिन्दु सभी धर्मवालों अपने अपने महापुरुषों की मूर्तियाँ और मन्दिर बनाकर सारे भरत को ढाँक दिया।

भगवान महावीर ने अपने जमाने के विभिन्न विचारों मान्यताओं में एकता लाने के लिए जिस अनेकान्तवाद अथवा स्याद्वाद(Relativity) के सिद्धांतों को जन्म दिया था, उसने भारतीय विचारकों में सत्यको अनेक पहलुओं से देखने और जानने के लिए एक विशेष स्फूर्ति पैदा कर दी। इससे भारतको धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त सभी प्रकार का साहित्य सृजन करने में बड़ी प्रगति मिली। महावीरके उपासकोंने तो इस दिशा में खास उत्साह दिखाया। उन्होंने भारत के साहित्य और कलाका कोई क्षेत्र भी ऐसा न छोड़ा जिसमें उन्होंने अपनी स्वतन्त्र रचनायें और टीकायें करके उसे ऊंचा न उठाया हो। इसी लिये हम देखते हैं कि अन्य धर्मों की तरह जैनसाहित्य केवल दार्शनिक. नैतिक और धार्मिक विचारों का भण्डार नहीं है बल्कि वह इतिहास, पुराण कथा, व्याख्यान, स्तोत्र, काव्य नाटक चम्पू छन्द अलंकार, कोष, व्याकरण भूगोल, ज्योतिष, गणित, राजनीति, यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र आयुर्वेद, बनस्पति-विद्य, मृगपक्षिविद्या, वस्तुकला मूर्तिकला, चित्रकला, शिल्पकला और संगीतकला आदिके अनेक लोकोपयोगी ग्रन्थों से भी भरपूर है[१]। इतिहासज्ञों के लिए जो जैनियोंके साहित्यमें इतनी अधिक और प्रामाणिक सामग्री भरी हुई है कि इसके अध्ययनसे भारतीय इतिहास की अनेक गुत्थियां आसानी से सुलझ सकती हैं।

न्यायशास्त्र के क्षेत्र में तो जैन विद्वानोंकी सेवायें भारत के लिए

बहुत ही मूल्यवान है। ईसा पूर्वकी छटी सदी में अक्षपाद गौतमने बुद्धि· वाद द्वारा भौतिकोंके जड़वादका निराकरण करने के लिये जिस न्याय· शास्त्र को जन्म दिया था, उसे गहरे शोध और अनुसन्धान द्वारा पूरी ऊंचाई तक उठाना और उसका अध्यात्मविद्याके साथ सम्मेल करना जैन· नैयायिकोंका ही काम था। ईसके लिये महा० उपा० सतीशचन्द्र विद्याभूषण जैसे प्रकाँड विद्वानने जैनन्यायकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है, उनका कहना हैं कि ईसाकी पहली सदी में होने वाले जैनाचार्य उमा-स्वाति जैसे अध्यात्म विद्याविशरद तथा छटी सदी के सिद्धसेन दिवाकर और आठवीं सदी के अकलंकदेव जैसे नैयायिक इस भूमि पर वहुत कम हुए हैं[२]।

## भारतीय भाषाओं को जैनधर्म की देन

भगवान महाबीर की दृष्टि बहुत ही उदार थी और उनका उद्देश्य प्राणी मात्रका कल्याण था, वह अपने सन्देश को सभी तक पहुंचाना चाहते थे, इसीलिये उन्होंने ब्राह्मणोंकी तरह कभी किसी भाषामें ईश्वरीय भाषा होनेका आग्रह नहीं किया। उन्होंने भाषाकी अपेक्षा सदा भावों को अधिक महत्तादी। उनके लिये भाषा का अपना कोई मूल्य न था, उसका मूल्य इसी में था कि वह भावों को प्रकट करने का माध्यम है। जो भाषा अधिकतर लोगों के पास भावों को पहुँचा सके वही श्रेष्ठ है भाषा की श्रेष्ठता उपयोगिता पर निर्भर है, जातीयता पर नहीं। इसलिये उन्होंने अपने उपदेशों के लिये संस्कृत को माध्यम न बनाकर अर्द्धमागधी नाम की प्राकृत भाषा को माध्यम बनाया, जो उस समय हिन्दुस्तानी भाषा की तरह भारत के सभी पूर्वीय और मध्य देशों में आम लोगों द्वारा बोली और समझी जाती थी। इस भाषा में न केवल मगध देश की बोली ही शामिल थी, बल्कि विदेह, काषी, कौशल, मालवा, कोशाम्बी जैसे आस

1 Dr. Winternitz, History of Indian Lit. vol II—PP. 564. 505.

२ देखो महा० सतीशचद्र द्वारा १९१३ में स्याद्वादविद्यालय काशी में दी हुई स्पीच।

पश्च के सभी इलाकों की बोलियाँ शामिल थीं। भगवान की इस उदार परिणति से भारत की सभी बोलियों को अपने उत्कर्ष में बड़ी सहायता मिली है। इसी कारण जैन धर्म भारत के जिन जिन देशोंमें फैला अथवा जिन २ कालों में से गुजरा, यह सदा उन्हींकी बोलियों में ज्ञान देता और साहित्यसृजन करता चला गया। इसलिये जैन साहित्य की यह विशेषता है कि यह संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, मागधी शौरसेनी, महाराष्ट्री, गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी, तामिल तैलगु, कनड़ी आदि भारत के उत्तर और दक्षिण की, पूर्व और पश्चिम की सभी पुरानी और नई भाषाओं में लिखा हुआ मिलता हैं[1]। यही एक साहित्य ऐसा है, जिस से कि हम भारतीय भाषाओं के क्रमिक विकास का भली भाँति अध्यन कर सकते हैं।

## उपसंहार और कृतज्ञता

इस तरह भगवान महावीर ने अपने आदर्शजीवन और उपदेश से जिस जैन संस्कृति का पुनरुद्धार किया था उसने भारतीय, सभ्यता साहित्य, कला और भाषाओं के विकास और उत्थानमें बहुत बड़ा भाग लिया है इन भगवान महावीर का, जिसने भारत के विचार को उदारता दी, आचार को पवित्रता दी जिसने इन्सान के गौरवको बढ़ाया, उसके आदर्श को परमात्मा की बुलन्दी तक पहुंचाया, जिसने इन्सान और इन्सान के भेदों को मिटाया, सभी को धर्म और स्वतन्त्रता का अधिकारी बनाया, जिसने भारत के अध्यात्म-सन्देश को अन्य देशों तक पहुँचाया और उनके सांस्कृतिक सोतोंको सुधारा, भारत जितनाभी गर्वकरे उतना ही थोड़ा है।

1 Wiuternitz-History of Indian Lit. vol 11-pp 594, 595

# भगवान महावीर की शिक्षायें

१ आत्मा स्वभाव से शिवं, शान्त और सुन्दर है, अजर, अमर और अविनाशी है। आत्मा अनन्त शक्तियों का भँडार है। अपने भाग्य का विधाता है। इसकी उन्नति और अवनति इसके हाथ में है। इस लिये आत्मविश्वासी बनो।

२ जिसने आत्मस्वरूप और आत्मशक्तियों को जान लिया है वास्तव में वही ज्ञानी है।

३ जो जैसा कर्म करता है वह वैसा ही फल पाता है, कर्म से ही सुख और कर्म से ही दुःख मिलता है इसलिये कर्म करने में बहुत सावधान रहना चाहिये। पवित्र आदर्श सिद्धिकेलिये साधनभी पवित्र होना चाहिये।

४ सभीको जीवन प्यारा है इसलिये "जियो और जीने दो"।

५ सत्य वाणी वही है जो प्रिय और हित साधक है इस लिये जब बोलो हित मित वचन बोलो।

६ बिना वाजिब हुए या बिना दिये लोभ वश दूसरे का द्रव्य लेना अन्याय है इससे सदा बचना चाहिये।

७ वास्तव में संतोष ही धन है। आवश्यकताओं से अधिक वस्तुओं का ग्रहण करना अनेक दुःखों का कारण है। सुख शान्ति के लिये आवश्यकताओं को मर्यादा में रखते हुए उन्हें कम करते रहना चाहिये।

८ मन वचन काय की जीत ही जीत है। इन्द्रियों के विषय भोगों से ऊपर उठना ब्रह्मचर्य है।

९ सात्विक जीवन के लिये शुद्ध शाकाहारी होना आवश्यक है।

यह पुस्तक श्री अ. वि. जैन मिशन द्वारा
आयोजित अहिंसा सप्ताह" में
वितरणार्थ
श्री मंगलसैन फकीरचंद जी जैन
एजेंट मोदीनगर इण्डस्ट्रीज (मोदीनगर)
नयाबाजार बड़ौत ने भेंट की

धन्यवाद ।